वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

स्वानुभूतिप्रकाश

गुरु - शिष्य विशेषांक

प्रकाशक :

श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट

भावनगर - ३६४ ००१.

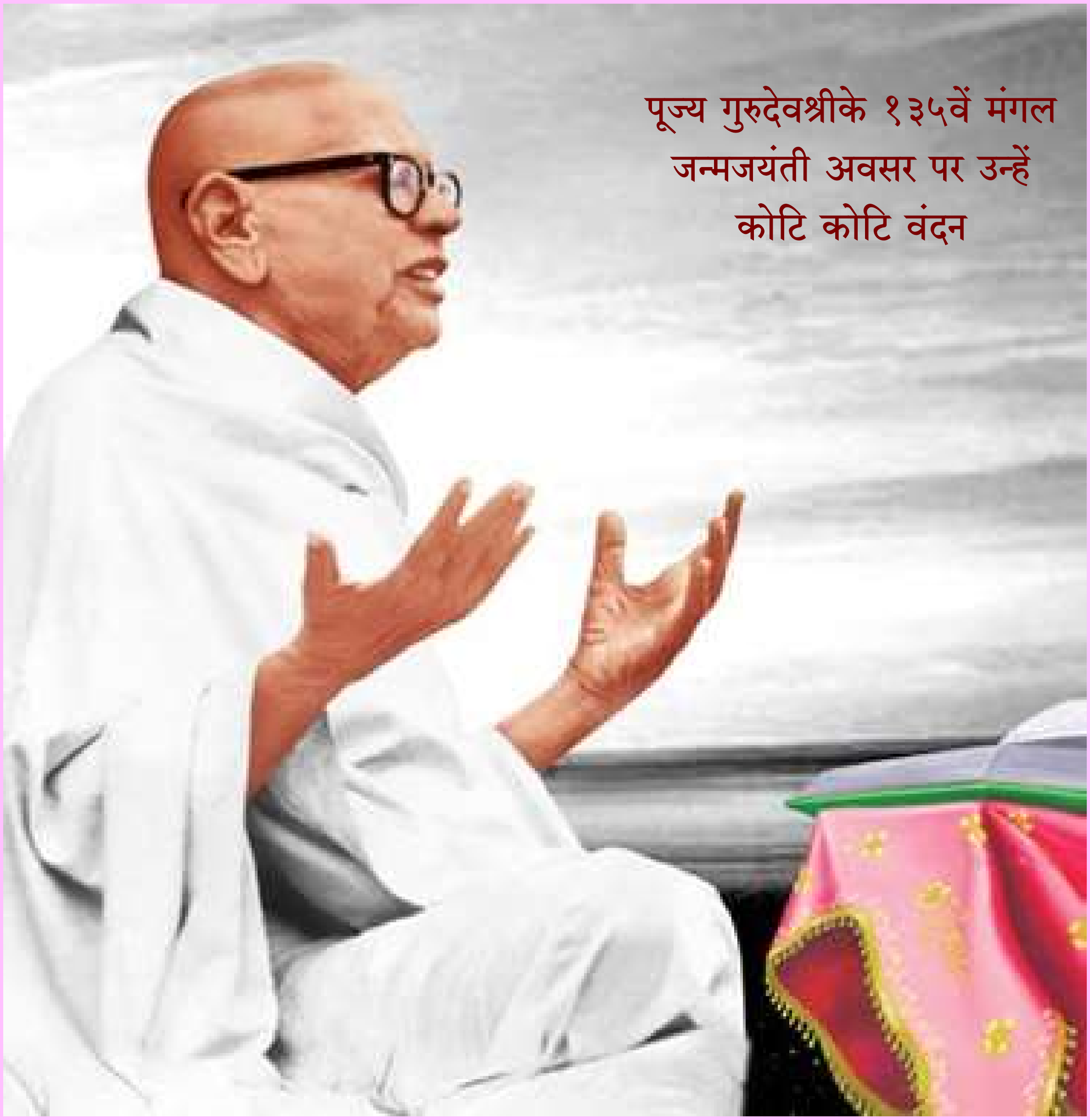

पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी तो तीर्थंकर भगवान की दिव्यध्वनि जैसी महामंगलकारी, आनंद उपजानेवाली थी। ऐसी वाणी का श्रवण जिनको हुआ वे सब भाग्यशाली हैं। पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी और पूज्य गुरुदेवश्री तो इस काल के एक अचंभा थे।

–पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन

आपके आशीर्वाद से पूर्ण आनंदमयी निधि को प्राप्त हो जाऊँ और अनंत पदार्थों के तीनकाल के अनंते भाव वर्तमान एक-एक भाव से अविच्छिन्न प्रत्यक्ष होते रहें – ऐसी तीव्र अभिलाषा है।

–पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी

गुरुदेव तो स्वयं एक अलौकिक द्रव्य थे, अलौकिक उनका परिणमन था और पुण्यका वाणीका योग भी कोई अलौकिक सातिशय योग था।

–पूज्य भाईश्री शशीभाई

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५५०, अंक-३१७, वर्ष-२६, मई-२०२४

पूज्य गुरुदेवश्रीके विभिन्न आगमों पर हुए प्रवचनोंमेंसे चयन किये हुए वचनामृतोंका ग्रंथ-'परमागमसार'में से कुछएक वचनामृत

शरीर-धन-मकान आदि अनुकूलता देखकर तुझे विस्मय और कौतूहल होता है, किन्तु भगवान आत्मा तो महिमावन्त पदार्थ है, अजायबघर है, उसके प्रति कौतूहल तो कर! भगवान सर्वज्ञदेवने जिनके इतने-इतने बखान किये और महिमा गायी है, ऐसा आत्मा कैसा है उसे देखनेका कौतूहल तो कर! एक बार विस्मयता तो कर कि तूँ कितना विराट, कितना महान पदार्थ है! उसे देखनेका, अनुभव करनेका कौतूहल तो करे! नरकके नारकी घोर यातनामें पड़े रहने पर भी ऐसे महान आत्माके प्रति कौतूहलता कर आत्मानुभव कर लेते हैं, तो तूँ ऐसे अनुकूल योगमें एक बार कौतूहल तो कर । ९२

*

अरे भाई ! तेरे जैसा कोई धनाढय नहीं । तुम्हारे अन्तरमें परमात्मा विराजते हैं, इससे अधिक धनाढयपन अन्य क्या हो सकता है ? ऐसे अपने परमात्मस्वरूपकी बात सुनते ही तुझे अन्तरसे उल्लास, उछलना चाहिए, इसकी लगन लगनी चाहिए, इसके पीछे पागल हो जाना चाहिए - ऐसे परमात्मस्वरूपकी धुन लगनी चाहिए। सच्ची धुन लगे तो, जो अन्तर स्वरूप है वह प्रगट हुए बिना कैसे रहे ? अवश्य ही प्रगट हो । १२९

*

एक और ज्ञान-सिन्धु है व दूसरी ओर भव-सिन्धु है - जहाँ रुचे वहाँ जा । १७९

*

जिसने बाहरमें किसी रागमें - संयोगमें-क्षेत्रमें व ऐसे ही कहीं न कहीं या किसी द्रव्यमें - क्षेत्रमें-कालमें, कुछ ठीक सा मानकर, वहाँ रुककर समय गँवाया है - उसने अपनी आत्माको ठग लिया है। २१६

*

जिनके सिर पर जन्म-मरणरूपी तलवार लटक रही है - फिर भी जो संयोगोंमें खुशी मानते हैं, वे पागल हैं । २३३

*

सत्–प्राप्तिके लिए यदि सारी दुनिया बिक जाए, पूरा जगत चला जाए तो भी आत्माको न गँवाया जाए। २३४

*

(इस जीवन कालमें) धन उपार्जनकी वृति तो आत्मघात ही है । वास्तवमें यह तो आत्मलाभका अवसर है – आत्माके आनन्दकी कमाईका अवसर है, इसे न चूके। २४०

*

अहो! सम्यग्दृष्टि जीवको छः–छः खंडके राज्यमें संलग्न होने पर भी, ज्ञानमें तनिक भी ऐसी मचक नहीं आती कि ये मेरे हैं, और छियानवै हजार अप्सरा जैसी रानियोंके वृन्दमें रहने पर भी उनमें तनिक भी सुखबुद्धि नहीं होती । अरे! कोई नरककी भीषण वेदनामें पड़ा हो तो भी अतीन्द्रिय आनन्दके वेदनकी अधिकता नहीं छूटती है । इस सम्यग्दर्शनका क्या माहात्म्य है – जगतके लिए इस मर्मको बाह्य दृष्टिसे समझना बहुत कठिन है। २९९

*

हे प्रभु! आपने चैतन्यका अनन्त भंडार खोल दिया है। तो हे प्रभु! अब ऐसा कौन होगा जो तिनके–समान चक्रवर्तीके राज्यको छोड़कर, चैतन्यरूपी खजानेको खोलने न निकल पड़े? ३२९

*

(चलो सखी वहाँ जईए जहाँ अपना नहीं कोय,
शरीर भखे जनावरा मुवा रोवे न कोय।)

आहा हा ! संगसे दूर हो जा ! संगमें रुकना योग्य नहीं । गिरि–गुफामें अकेला चला जा। यह मार्ग अकेलेका है। जो स्वभावके संगमें अनुरक्त हुआ उसे शास्त्र–संग भी नहीं रुचता। आहा हा! अन्तरकी बातें बहुत सूक्ष्म हैं, भाई! क्या कहें । ४३३

*

आहा हा! दिगम्बर संतोंकी वाणी तो देखो! चीर–फाड़ करती हुयी त्रिकाली चैतन्यतत्त्वको बतलाती है। आहा हा! शुद्धनय तो ध्यान करनेकी भी नहीं कहता; शुद्धनय पर्यायको भी स्वीकार नहीं करता, यह तो सदा ही आनन्दस्वरूप शुद्ध परमात्मतत्त्व ही को स्वीकार करता है। आहा हा ! भाई, तेरे पूर्ण प्रभुकी महिमा तो देख! ५०२

*

सिद्ध भगवानमें जैसी सर्वज्ञता, जैसी प्रभुता, जैसा अतीन्द्रिय–आनन्द और जैसा आत्मवीर्य है; वैसी ही सर्वज्ञता–प्रभुता–आनन्द और वीर्यशक्ति तेरे आत्मामें भी भरी है।

भाई, एक बार हर्षित तो हो कि अहो! मेरा आत्मा ऐसा परमात्म–स्वरूप है । ज्ञानानन्द–शक्तिसे भरपूर है। मेरे आत्माकी शक्ति खो नहीं गयी है। अरेरे! मैं हीन हो गया हूँ, विकारी हो गया हूँ, अब मेरा क्या होगा? – ऐसे न डर, बेचैन न हो, हताश न हो। एक बार स्वभावके प्रति उत्साह ला। स्वभावकी महिमा लाकर अपनी शक्तिको उछाल। ५९३

*

वीतरागकी वाणी सुनते हुए कायर काँप उठते हैं, जब कि वीर (बोधोल्लाससे) उछल पड़ते हैं। ६२१

*

जो आत्म-स्वभावका अनादर कर परवस्तुसे सुख - पाना मानता है - वह जीव घोर पापी है। अंतरमें महान चैतन्य-निधि विराजमान है, उसका तो आदर नहीं करता व जड़में सुख मानता है- ऐसे जीवके भले ही बाह्यमें लक्ष्मीके ढ़ेर हों, परन्तु भगवान उसे 'पापी' कहते हैं; तथा देहसे भिन्न चिदानन्द-स्वभावका भान करनेवाला चाहे छोटा मेढ़क ही हो तो भी वह, 'पुण्यजीव' है; वह जीव अल्पकालमें ही मोक्ष चला जाएगा । शुभभावसे हमें लाभ-होगा, शरीरकी क्रियासे धर्म होगा - ऐसा माननेवाला जीव भी पापी है । जिसे अन्तरमें परसे भिन्न चैतन्यका भान नहीं है, उसके भेदज्ञानके अभावमें, पाप-जड़का नाश नहीं होता - इसलिए वह पापजीव है । चाहे बड़ा राजा ही हो पर यदि उसे भिन्न चैतन्यका भान नहीं तो उसके पापका मूल कायम ही है, अतः वह पापजीव है। भेदज्ञान-बिना (पापका) मूलका नाश नहीं होता। ७५८

*

जिसकी भली होनहार है उसी जीवको ऐसा विचार आता है कि 'मैं कौन हूँ'? मैने कहाँसे आकर यहाँ जन्म लिया ? मर कर कहाँ जाऊँगा? मेरा क्या स्वरूप है? यह कैसा चरित्र-निर्माण हो रहा है? आदि। वह इनके निर्णयमे लगता है कि आत्मा, शून्यमेंसे आया है अथवा पूर्व-भवमेसे? मैंने कौन से कुलमें जन्म लिया है? मैं कौन हूँ तथा मर कर कहाँ जाऊँगा अर्थात् इस देहके छूटने पर कहाँ स्थिति होगी? ऐसा विचारवान श्रोता होना चाहिए। मेरा वास्तविक स्वरूप क्या है? और यह सब वर्तन कैसे हो रहा है? खाना-पीना व्यापार-धन्धा आदि हो रही क्रियाएँ क्या हैं? मुझे ये

जो भाव होते हैं अर्थात् कुटुम्ब-व्यापार-शरीरादि संबंधित होने वाले पाप-भावोंका क्या फल होगा? और यह जीव कैसे दुःखी हो रहा है - ऐसे विचार करनेवाला ही योग्य श्रोता है। जिसको दुःख ही नहीं लगता वह पात्र श्रोता नहीं है। ९७७

*

इस कालमें बुद्धि अल्प, आयु अल्प व सत्-समागम दुर्लभ है, उसमें है जीव! तुझे यही सीखने योग्य है कि 'जिससे तेरा हित हो व जन्म-मरणका नाश हो'। १००३

*

अहो! महान संत-मुनिवरोंने जंगलमें रहकर आत्मस्वभावका अमृत-निर्झर प्रवाहित किया है। आचार्यदेव तो घर्मके स्तंभ हैं, जिन्होंने पवित्र-धर्मको जीवन्त कर रखा है;... गजबका काम किया है, साधक-दशामें स्वरूपकी शान्ति-वेदन करते हुए परीषहोंको जीतकर, परम सत्को अक्षुण्णरूपसे जीवंत रखा है। आचार्यदेवके कथनमें केवलज्ञानकी झंकार गूंजती है। ऐसे महान् शास्त्रोंकी रचना कर उन्होंने बहुत जीवों पर असीम उपकार किया है। उनकी रचना तो देखो! पद-पदमें कितना गंभीर रहस्य भरा है। यह तो सत्यका शंकनाद है, इसके संस्कार होना कोई अपूर्व महाभाग्यकी बात है तथा उसकी समझ तो मुक्तिका वरण करने जानेके लिए श्री-फल समान है। जो समझे उसका तो मोक्ष ही (होनेवाला) है। १००६

*

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्रीके शिष्यरत्न पुरुषार्थमूर्ति पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजी संबंधित प्रमोदपूर्ण हृदयोद्‌गार !!

....मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ. ज्ञान किसका करे ? और किससे कार्य करवाये? आ..हा..हा...! चैतन्यहीरा! अनन्त गुणों के पहलू सहित (है), प्रभु! आ..हा...! वास्तव में तो उसके-जीव के परिणाम जो हो रहे हैं वे भी त्रिकाली ध्रुव से नहीं। आ..हा..हा...! तो पर के परिणाम जीव करे (यह कैसे बने?)

द्रव्य पर्याय का दाता नहीं और कर्ता (भी) नहीं। आ..हा..हा...! भाई ने-'निहालभाई'ने नहीं लिखा? 'परिणाम परिणमित हो चुके फिर भी मैं वैसा का वैसा रह गया। लोगों को निश्चयाभास जैसा लगे। लोगों को खबर नहीं। परिणाम की दृष्टि ध्रुव पर है और वे परिणाम बदल गये और मैं तो वैसा का वैसा (रह गया)। मैं माने ध्रुव। आ..हा..हा...! (लोगों को) यह नहीं बैठता। **'निहालभाई' की बात परम सत्य है।** लेकिन निश्चयाभास है ऐसा कहकर निकाल दिया!

(कल एक मुमुक्षु) देखने आये थे (वे कहते थे कि), 'आप उन्हें निश्चयाभासी घोषित करे तो हम देखने आये।' कहिये, ठीक! (दो जन आये और कहा कि) 'निहालभाई' को आप निश्चयाभासी घोषित कीजिये तो हम इस मेले में आ सकते हैं।' अरे..! आओ-नहीं आओ, हमें क्या काम है ? तुमको क्या मतलब है ? वे जहाँ थे वहाँ थे। आ..हा..हा..!

(श्री समाधितंत्र श्लोक-५७-५८, दि. २६-६-७५, प्र.-७२, २५:२४ मिनट पर)

*

(ज्ञानी को) वीतरागस्वभाव की दृष्टि है इतनी वीतरागता तो दृष्टि की अपेक्षा है, अस्थिरता की अपेक्षा ज्ञानी को राग आता है। आ..हा...! शरीर आदि सजाने का राग आता है। नहाते हैं, सजते हैं। 'निहालभाई' में तो ऐसा आता है (कि), देहत्याग पूर्व नहाये थे। 'निहालभाई'! आता है? पुस्तक में आया है। देहत्याग की तैयारी थी इसके पहले स्नान किया। आता है, ऐसा विकल्प आता है। आता है ? (श्रोता :- प्रस्तावना में आता है।) हाँ, प्रस्तावना में। है न ? आता है, ऐसा विकल्प होता है। आ..हा..हा...! परन्तु वे उसे दोष जानते हैं। लाभ के लिये करता हूँ, ऐसा नहीं। आ..हा..हा...! करता तो नहीं हूँ लेकिन होता है, वह भी लाभ हेतु नहीं। आ..हा..हा...! अस्थिरतावश शरीर, वाणी, आहार और पानी की अनुकूलता का राग आता है परन्तु अभिप्राय में उसका स्वीकार नहीं। आ..हा..हा...!

('श्री समाधितंत्र' श्लोक-६१-६२, दि. ३०-६-७५, प्र.-७६, २९:४५ मिनट पर)

*

जैसे पहना हुआ वस्त्र जीर्ण होनेपर समझदार मनुष्य अपने शरीर को जीर्ण हुआ नहीं मानता वैसे अंतरात्मा शरीर जीर्ण होनेपर अपने आत्मा को जीर्ण हुआ नहीं मानता। आहा..हा...! अरे...! पर्याय में पूर्ण हीन (पर्याय) हुई-बहुत हीन (पर्याय हुई) तो इससे ध्रुव हीन हुआ ऐसा मानेगा क्या ? आ..हा..हा...! इसके बजाय शरीर की जीर्णता से आत्मा की जीर्णता (हुई) सो बात कहाँ है? आ..हा..हा...! धर्मी की दृष्टि! शरीर पर लक्ष ही कहाँ है? चाहे लोमड़ी काटे और टुकड़े कर दे (लेकिन)

धर्मात्मा की दृष्टि तो आत्मा पर पड़ी है। लोमड़ी शरीर के टुकड़े कर दे तो भी उस वक्त अंदर में तो आनंद का वेदन है! वह (–लोमड़ी) काटे, और यहाँ आनंद पुष्ट हो! आ..हा..हा...! उसे और इसे क्या संबंध है? आ..हा..हा...! वह टुकड़ा अलग हो, यहाँ आनंद की पुष्टि हो ! आ..हा..हा...! चीज ही अलग है। भाई ने लिखा है न ? 'निहालभाई'! कि, धधकती हुई करोड़ों सुई शरीर में चुभे तो भी ज्ञानी को इसकी चिंता नहीं, क्योंकि उसका मुझे स्पर्श तक नहीं। है न ? 'निहालभाई' में है। धर्मी तो हर समय तैयार ! शरीर में धधकती करोड़ों सुई लगायें तो भी उसे मैं स्पर्शता तक नहीं, उसका मुझे स्पर्श तक नहीं। आ..हा..हा...! जिससे–शरीर (से) मेरा अत्यंत अभाव (है), उसमें–शरीर में हो इससे मुझे क्या? आ..हा..हा...!

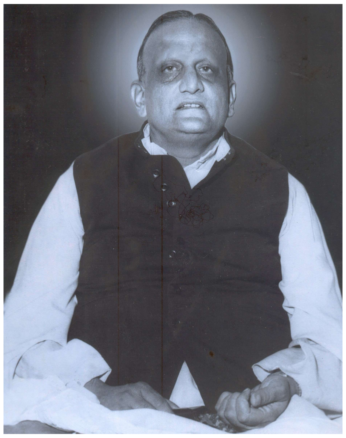

('श्री समाधितंत्र' श्लोक–६३–६५, दि. ०२–०७–७५, प्र.–७८, २९:१० मिनट पर)

*

...पर्याय में परिणमन है सो तो पर्याय का है। 'निहालभाई' में एक जगह आया है कि, परिणामी–अपरिणामी कहे तो... परिणामी–परिणाम ! आता है एक जगह। 'अपरिणामी–परिणाम' (कहिये)। ज़ोर (वहाँ है न)! परिणाम स्वयं अपरिणामी का लक्ष करता है, इसलिये 'अपरिणामी–परिणाम'। (आता) है? इस तरफ है। आ..हा...! वस्तुस्थिति है। क्योंकि अपरिणामी को परिणाम ने जब जाना तब 'अपरिणामी–परिणाम' वैसे ! मार्ग ऐसा सूक्ष्म है, भाई ! और सर्वज्ञपंथ में ही ऐसा मार्ग होता है, तीनकाल में अन्य कहीं भी होता नहीं। आ..हा..हा...!

('श्री समाधितंत्र' श्लोक–६५–६६ दि. ०३–०७–७५, प्र.–७९, ०९:२० मिनट पर)

*

...विकल्प उठे वह भी नुकसानकारक है। आ..हा..हा...! भाई ने–'निहालभाई' ने तो यहाँ तक नहीं लिखा? (कि), 'सुननेवाले को नुकसान और सुनानेवाले को (भी) नुकसान। लिखा है? दोनों को (नुकसान)। आ..हा..हा...!

('श्री समाधितंत्र' श्लोक–७१–७२, दि. ०९–०७–७५, प्र.–८४, ३४:४५ मिनट पर)

*

...प्रवृत्ति में भी विवेक चाहिये। एक बार तो 'निहालभाई'ने पूछा है कि, विवेक क्या ? विवेक को रखो एक ओर ! एक बार ऐसा (कहा) और एक बार ऐसा भी कहा कि, विवेक पहले चाहिये। दो प्रश्न हैं। है, दो प्रश्न हैं। एक जगह विवेक की बात (वैसे कही) है तो दूसरी एक जगह विवेक को स्थापित किया है कि, विवेक आवश्यक है, किन्तु पर्यायबुद्धि नहीं रखनी है, पर्याय पर ज़ोर नहीं देना है, वैसे। है ऐसा एक जगह। कौनसा नंबर है, पता है ? नहीं पता ? प्रश्नों में है। किस जगह प्रश्न है पता है? हमको तो उतना याद नहीं रहता। न्याय याद रहता है। ऐसा कहीं पर आया था, हं ! आ..हा..हा...!

एक का अर्थ ऐसा कि, ऐसा राग होना चाहिये वरना ऐसा होगा या वैसा होगा। अरे...! जो होगा सो होगा। वैसे भी सम्यग्दर्शन में स्वच्छन्दी राग नहीं होता। उन्हें योग की मर्यादा में ही होता है। परन्तु उसका ज़ोर जाना चाहिये वस्तु पर। जो महा–खान है। उस खान पर नज़र करनी चाहिये। ज़ोर वहाँ जाना चाहिये। पर्याय का विवेक इसके अनुपात में होता है परन्तु ज़ोर पर्याय पर नहीं होना चाहिये। कहीं आता है। दो बोल हैं। एक बोल निकालेंगे तो दूसरा मिल जायेगा। लिख लिया होगा। विवेक का नकार किया है वहाँ भी विवेक का हकार किया है। उसका पन्ना लिखा होगा। है, उसमें बहुत विषय (है)।

('श्री समाधितंत्र' श्लोक–७१–७२, दि. ०९–०७–७५, प्र.–८४, २९:१०, ४२:१० मिनट पर)

श्रुतलब्धि धारक कुंदकुंदाचार्य वारिसदार पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

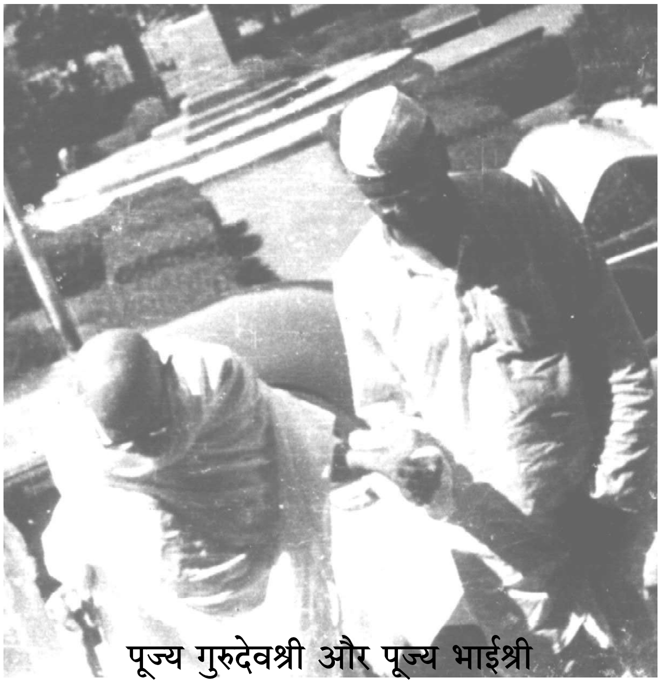

पूज्य गुरुदेवश्री और पूज्य भाईश्री

सामान्यतया वर्तमानमें कोई ज्ञानीके सान्निध्यमें आये उसको सर्वप्रथम संप्रदायसे कुछ न कुछ अंशमें तो अलग होना ही पड़ता है। तब ही वह ज्ञानीके समीप आ सकता है। क्यों? कि संप्रदायकी जो रुढ़ि या प्रणाली है उस प्रणालिकासे ज्ञानीका उपदेश और ज्ञानीके सब प्रकार अलग ही होते हैं। मुख्यरूपसे गुरुदेवश्री जब संप्रदायसे अलग हुए, स्थानकवासी श्वेतांबर संप्रदायका उन्होंने त्याग किया, प्रसिद्धरूपसे मुँहपत्ती छोड़कर ऐसी स्पष्टताकी कि, मैं कोई स्थानकवासी साधु नहीं हूँ। मैं सनातन दिगम्बर जैन धर्मका स्वीकार करता हूँ और इनकी परंपरा और आम्नायके प्रति मेरी मान्यता सुस्पष्ट है।

कुन्दकुन्द आचार्यदेवके वचन 'समयसार' आदि स्वयंको आत्मज्ञानकी प्राप्तिमें निमित्तभूत हुए हैं। अतः कुंदकुंदाचार्य और इनके शास्त्रोंके प्रति उन्हें अत्यंत भक्ति प्रकट हुई थी। इस भक्तिका मूर्तिमंत स्वरूप ऐसा है कि, सोनगढ़में 'परमागम मंदिर' के अंदर कुंदकुंदाचार्य देवके शास्त्र व उनपर अमृतचंद्राचार्यदेवके द्वारा हुई टीकाको दिवार पर संगेमरमरके अंदर उत्किर्ण करके लगाये गये हैं। पूरे हिन्दुस्तानमें दिगम्बर संप्रदायमें दिगम्बर आचार्योंके शास्त्रोंको संगेमरमरमें उत्कीर्ण करके उसका मंदिर सर्वप्रथम बना हो तो वह सोनगढ़में है। बादमें कहीं हुआ हो तो पता नहीं। परंतु पूरे हिन्दुस्तानमें कहीं ऐसा नहीं बना था। यह उनकी कुंदकुंदाचार्यके प्रति, उनके शास्त्रोंके प्रति उनकी गुरुभक्ति और श्रुतभक्तिका सबूत है।

-पूज्य भाईश्री शशीभाई

(श्री 'स्वानुभूतिदर्शन' प्रवचन नं.-३७९)

पूज्य भाईश्रीकी पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रति भक्तिपूर्ण हृदयोद्गार
(विविध प्रवचनोंमें से)

जो विरासत मिली है ऐसा कह सकते हैं। 'गुरुदेवश्री'को विरासत मिली है। 'कुंदकुंदाचार्य' और 'अमृतचंद्राचार्यदेव'की विरासत मिली है!! योगानुयोग उनकी ही वाणी निमित्तभूत हुई है और वे उनके रहस्य तक पहुँच गये। ये जो शैली है वह कोई ऐसी शैली है कि, जीवको शुभकी रुचि छुड़ा दे। वरना जीव अशुभमें न चला जाये इस डरसे भी साथ-साथ कुछ इतना शुभ करो इतना ये करो ऐसा (आ जाये), अशुभमें न चले जाए इसलिए इतना शुभ करना, रोज़ इतना शुभ करना, ऐसा करना.. वैसा करना। बजाय इसके बात-बात पर जो शुभका निषेध किया है, सो गज़बका निषेध किया है!! और ऐसा निषेध करनेके पीछे केवल एकमात्र परमार्थदृष्टि! जबरदस्त परमार्थदृष्टि है उनकी!! इसलिये गुरुदेवश्रीकी शैली थोड़ी अलग दिखती है। अलग शैलीके दर्शन होते हैं।

*

बहुत-सी बातें की हैं ! इतनी बातें की हैं और ऐसी-ऐसी बातें की हैं! एक गज़बका कार्य हो गया है। ४५-४५ साल तक प्रवचन हुए हैं, ये कोई गज़बका कार्य हुआ है!! यह बात तो ज्यों-ज्यों जीवोंकी समझमें आयेगी त्यों-त्यों इसकी कीमत (मूल्यांकन) होती जायेगी। ऐसी बात है। समझने पर इसकी कीमत आयेगी। वैसे पता चले ऐसा नहीं है।

*

('गुरुदेवश्री' बहुत कम पढ़े लिखे थें) फिर भी शास्त्रोंका गहरा और विस्तारवाला विषय कहाँसे निकाला? एक प्रकारकी लब्धि हो गई - 'गुरुदेवश्री'के पास लब्धि-सा प्रकार था। शब्द तो शब्द हैं, लब्धि क्या कास करती है!! शब्द तो शब्द हैं परन्तु वह शब्द आचार्यमहाराजने उस जगह क्यों रखा? और इसके पीछे उनका क्या कहना है! यह बात उनके श्रुतज्ञानमें चमत्कारिकरूपसे आती है!! इसलिये उसे 'लब्धि' कहते हैं। ऐसी 'गुरुदेवश्री'को श्रुतकी लब्धि

(अनुसंधान पृष्ठ संख्या ११ पर..)

पूज्य सोगानीजीके संबंधमें.....
(पूज्य भाईश्रीके दि. २९-७-९१ के प्रवचनमेंसे)

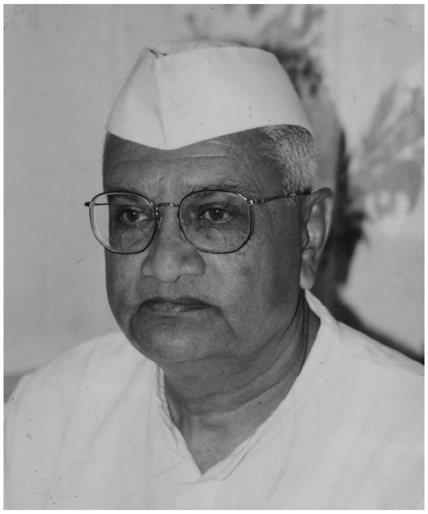

मुमुक्षु :- गुरुदेवने उनके बारेमें एकावतारी हैं ऐसा कहा लेकिन उनको खुदको पता लग गया हो ऐसा उल्लेख कहीं आता है ? कि जैसे मैं एकावतारी हूँ !

पूज्य भाईश्री :- उनको खुदको खयालमें नहीं आया, ऐसा खयाल गुरुदेवश्रीको आया है। वे खुद तो इसी भवमें पूर्णता प्राप्तिके प्रयत्नमें लगे हुए थे। हमलोगोंको विशेष परिचय था तो ऐसा लगता था कि, अगर आयुष्य होता तो शायद ऊपरके गुणस्थानमें आ जाते (यानी कि) मुनिदशामें (आ जाते!) बहुत पुरुषार्थ था ! (अगर ऐसा होता) तो इस कालमें भावलिंगी मुनिके दर्शन हो जाते !! लेकिन आयुष्य भी न था और वस्तुतः जो बनना होता है (वही बनता है।) वस्तुस्वरूपमें क्या फर्क पड़ सकता है ? लेकिन मुनिदशा ऐसे जीव प्राप्त करते हैं, इतना तीखा पुरुषार्थ था ! बहुत तीखा पुरुषार्थ था !!

मुमुक्षु :- उनका अंगत लिखा हुआ कुछ है ?

पूज्य भाईश्री :- कुछ नहीं मिला है। कोई बात नहीं मिली। एक तो स्वयं किसीके संगमें रहनेके मतमें नहीं थे। किसी साधर्मीके संगमें रहनेके भी मतमें नहीं थे। और गुप्त रहकर अपना काम कर लेना, कोई न जाने वैसे गुप्त रहकर अपना काम कर लेना, इसके अलावा उनका वर्तमान परिस्थितिमें दूसरा कोई अभिप्राय नहीं था। (बाह्य) प्रसिद्धिसे आत्माको क्या लाभ है ? नुकसानका कारण है। नुकसान करे तो निमित्त होता है, न करे तो दूसरी बात है। परंतु जितना मर्यादित समय है, उस मर्यादित समयको एकान्तमें बैठकर ध्यानमें - आत्मध्यानमें विशेषरूपसे लगाना - यह उनकी मुख्य वृत्ति थी। इस वजहसे शास्त्र स्वाध्याय भी कम था। सत्संग तो नहीं था परंतु घरमें शास्त्र स्वाध्याय भी कम था, क्योंकि पुरुषार्थकी कला हस्तगत् थी। इसलिये जितना समय मिले उतना ध्यानमें बैठ जाते। दिन हो चाहे रात हो जितना समय मिले उतना (ध्यानमें बैठ जाते।) उस प्रकारसे काममें लगे रहते।

(आगे पत्रांक - १४में) नहीं आया ! एक ही बारमें अथाहका थाह ले लेना, पत्रा १३ **'पर वाह रे पुरुषार्थ ! तूने साथ रही उग्रताका संकल्प किया, मानो अथाहकी थाह सदैवके लिये एकबारमें ही पूरी ले लेगा।'** अथाह माने जिसके नीचे कोई तलवा न हो, मर्यादा न हो, सीमा न हो। 'भले ही सीमा न हो, पूरा कर दूँगा' एक ही बारमें पूरा कर लेना है ! खुदके पुरुषार्थका प्रकार उनको ऐसा लगता था। वस्तुस्वरूप अन्यथा

नहीं होता कि अभी पूर्णता प्राप्त हो जाये। लेकिन वे तो उस बातको गौण करके ही लग गये थे - श्रीमद्‌जीकी तरह ! इसलिये एकावतारीपना आया, गुरुदेवको ज्ञानमें ऐसा क्यों भासित हुआ ? (उसका कारण यह है)

(गुरुदेवश्रीने) बहुत गंभीरतासे यह बात कही थी। आगे-पीछे कोई चर्चा नहीं चलती थी। मौन होकर चक्कर लगा रहे थे। सुबह १० बजे आहार लेनेके पश्चात् स्वाध्याय मंदिरके होलमें थोड़े चक्कर लगाकर फिर अपने रूममें चले जाते। उस दिन सब मौन थे। कोई बात-चीत नहीं चलती थी। इतनेमें (अचानक) चलते-चलते खड़े रह गये। यहाँसे (भुजा) पकड़कर (कहा था)। भुजासे पकड़ते थे, जब कोई खास बात करनी हो तो हाथ पकड़कर बात करते थे, तो वैसे यहाँसे (हाथ) पकड़ा (फिर कहा) **'देखो ! यह अंदरसे आयी हुई बात है !'** बहुत गंभीरतासे (बोले) कि **'देखो ! ये अंदरसे आयी हुई बात है। ये सोगानी है न ! यहाँसे स्वर्गमें गये हैं, वहाँसे निकलकर झपट करेंगे।'** खास उनका काठियावाड़ी शब्द है। **'वहाँसे निकलकर झपट करेंगे, हमारे तो चार भव हैं। तीर्थंकरके भवमें तीर्थंकर अरिहंतको नमस्कार नहीं करते। दीक्षा लेते वक्त 'णमो सिद्धाणं' ऐसा उच्चार जब हम करेंगे तब हमारे नमस्कार उनको पहुँचेंगे।'** क्योंकि उस वक्त वे सिद्धालयमें पहुँच गये होंगे ! बहुत गंभीरतासे ये बात की थी। उनका (सोगानीजीके) पुरुषार्थका प्रकार कैसा था ! उसका परिमाण, माप जिसे कहते हैं, यह गुरुदेवके ज्ञानमें आया है। सीधी बात तो यह है।

*

(पृष्ठ संख्या ९ से आगे..)

थी!! द्रव्यश्रुत और भावश्रुतका ऐसा ही कोई सुयोग था कि, जहाँ बड़े-बड़े विद्वान भी पढ़े-लिखे पंडित भी उलझनमें आते हो वहाँ उन्हें चमत्कारिकरूपसे भाव भासित होते थे कि, यहाँ (आचार्यश्री) ऐसा कहना चाहते हैं!! ऐसी श्रुतकी लब्धि है।

*

ऐसी लब्धिके कारण हरएक शास्त्रमें से, अनेकों शास्त्रोंमें से चारों पहलूसे जो-जो विषय स्वयं चर्चामें लेते थे, उसकी स्पष्टता करते थे तब उस विषयके चारों पहलुओं को स्पष्ट कर देते थे! ऐसी स्पष्टता करते थे!! और चर्चाके दौरान भी किसी भी शास्त्रमें से चाहे कहींसे भी प्रश्न सामने आता तो वहाँ शास्त्रकर्ताका क्या कहना है वह उनके श्रुतज्ञानमें भासित होता वह स्पष्ट कहते थे। वह श्रुतकी लब्धिका विषय है। ऐसी श्रुतकी लब्धि है। यह बात 'पूज्य बहिनश्री' को भी अवभासित हुई थी इसलिये उनकी चर्चामें भी यह बात आयी है।

*

गुरुदेवकी वाणीका रहस्य जिनको समझमें आया है उनको प्रतीति आये ऐसा है कि, अरे..! यह तो कोई श्रुतकी लब्धि थी!! ऐसी बातें की हैं उन्होंने!

*

जीते जी मर जाना सीख लो !!!
- पूज्य भाईश्री शशीभाई

'मेरी आयु पूर्ण होनेका समय आ गया है, तो मुझे आत्माका अनुभव करनेके लिये क्या करना चाहिये?' इसमें देरी क्या करनी?

कभी कोई मरीज़ डॉक्टरसे ऐसा कहेगा क्या कि, अभी मेरा इलाज मत कीजिये दर्द हो रहा है लेकिन यह मेरा दर्द अभी मत मिटाना - ऐसा आजतक किसीने कहा होगा क्या? इसका मतलब क्या हुआ? बादमें करूँगा का मतलब ऐसा हुआ कि, अभी मुझे दुःख नहीं है। मैं वर्तमानमें सुखी हूँ - हालाँकि कल्पनाविहार है और कुछ नहीं। वरना ऐसा कोई कहेगा क्या? डॉक्टरको कोई ऐसा कहेगा क्या कि, अभी मेरा इलाज़ मत करो! भले ही मेरा रोग अभी चलता रहे, भले ही मेरा दर्द चालू रहे। यहाँ जो बादमें करुँगा - इसमें ऐसी गड़बडी है। यों कि, मैं वर्तमानमें दुःखी हूँ - यह बात भूल गया है।

यानी कि उम्र चाहे पूरी होने आयी हो या न आयी हो, सबको एक ही करनेका है। इसमें कोई उम्रकी बातको मुख्य-गौण करनेका प्रश्न ही नहीं उठता। जिसकी उम्र हो चुकी इन्हें तो दूसरा कोई विकल्प होना ही नहीं चाहिये। हमारे देश हिन्दुस्तानमें औसत आयु ७० सालके करीब मानी जाती है। ३५ साल हो गये कि मानो पचास प्रतिशत आयुको भोग चुका फिर तो Bonus life जैसा है। और शेष पचास प्रतिशतका कोई भरोसा नहीं है।

मुमुक्षु :- भाईश्री पहले तो आप ४० को बताते थे अब ३५ कर दिये।

पू. भाईश्री :- हकीकतमें तो चाहे कितनी भी उम्र हो आठ-दसकी उम्रमें भी कोई आदमी इस बातको सुन ले तो उसे ऐसा ही लगना चाहिये कि बहुत देर हो गई। First thought यही आयेगा।

मुमुक्षु :- पू. बहिनश्रीको ऐसा ही लगा था न !

पू. भाईश्री :- हाँ, उन्हें १५ सालकी उम्रमें देर हो गई ऐसा लगता था। देर हो गई ऐसा ही लगेगा। अभी जो ६०-७० सालकी उम्रमें भी विचार नहीं आता है तो इसका

मतलब कि जीवको चाहिये ही नहीं। ईमानदारीसे आत्मकल्याण करना नहीं चाहता। यह बात निश्चित है।

.....शरीरूप अपनेको मानकर अब मेरी उम्र हो चुकी है और मुझे आत्माका अनुभव करना है। तो कहते हैं कि, यह उम्र तेरी नहीं हुई। शरीरकी उम्र होती है। रोगकी उत्पत्ति है सो शरीरमें होती है। उम्र होती है वह शरीरको होती है।

मृत्यु होती है वह आत्माकी नहीं होती। शरीरसे भिन्न होनेका एक प्रसंग है और कुछ नहीं। कैसा प्रसंग है? साधारण प्रसंग है। रोज़ाना कपड़े बदलना वह साधारण प्रसंग है कि नहीं? रोज़ाना सुबह नहा-धोकर कपड़े बदलते हैं कि नहीं? साधारण प्रसंग है। वैसे इसमें भी उसकी अवधि पूरी होने पर शरीर बदलना यह एक आम बात है। मैं यूँ का यूँ मौजूद हूँ। देखिये! यदि पीछले भवमें मर गया होता तो वर्तमानमें मौजूद कैसे होता? लोग कहते हैं न कि आदमी मर जाता है या कोई प्राणीकी मृत्यु होती है। तो यहाँ नया जन्म शुरू हुआ मतलब कहीं पर पहले मरा तब यहाँ नया जन्म हुआ न? यानी मृत्यु हुई यह बात कहाँ नक्की होती है? मैं तो हाज़िर हूँ। 'मैं हूँ' - यह इस बातका सबूत है कि मेरी कभी मृत्यु हुई ही नहीं।

'आयु और रोगादि सब शरीरको लागू होते हैं, आत्माको ये कुछ भी लागू नहीं होता।' आत्माको ये कुछ भी लागू नहीं पड़ता। **'इसप्रकार आत्माको पहिचानना...'** भिन्न आत्माको पहिचानो। **'कि आत्मा ज्ञायक है।'** सबको जाननेवाला है। जो कुछ बाहरी और आंतरिक परिवर्तन होते हैं उन सबको जाननेवाला है। वास्तवमें आत्माको किसीसे कोई लेना-देना नहीं है। यूँ लोग बोलते हैं न मृत्युके समय कि, उनका किसीसे कोई सम्बन्ध रहा क्या? क्या वास्तवमें कोई सम्बन्ध था? परन्तु जीते जी मरना सीख लेना चाहिये। शरीरका संयोग हो उसवक्त ही मर जाना - यह सीख लेने जैसा है। वह ऐसे कि, मेरा किसीसे कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं अपना हित करने निकला हूँ। मेरा कार्य कर रहा हूँ। किसीके साथ किसी भी प्रकारका सम्बन्ध है ही नहीं, फिर क्या? केवल एक असंग तत्व हूँ। स्वयं केवल एक असंग तत्व है।

(श्री 'स्वानुभूतिदर्शन' पर पूज्य भाईश्रीके प्रवचनका अंश प्र.क्र. ४११)

आभार

'स्वानुभूतिप्रकाश' (मई-२०२४, हिन्दी एवं गुजराती) के इस अंककी समर्पणराशि स्व. परिचंदजी घोषाल एवं स्व. अवनीबहिन शाहके स्मरणार्थ ट्रस्टको साभार प्राप्त हुई है।
अतएव यह पाठकों को आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।

पूज्य बहिनश्रीके हृदयमेंसे प्रवाहित गुरु गुण संभारणा

सौराष्ट्र का गर्जता हुआ शेर, उनके जैसा कोई न था। व्याख्यान की धुआँधार वर्षा करते थे। यह सोनगढ़ के एक कोने में हीराभाई के बँगले पर परिवर्तन किया। शुरूआत में थोड़े लोग व्याख्यान में आते थे। फिर तो सबको लगा कि गुरुदेव ने जो किया है वह बिलकुल सही किया है। इसलिये गुरुदेव के पीछे लोग बड़ी तादाद में आने लगे।

इस पंचमकाल में जिसने गुरुदेव की वाणी सुनी वह भाग्यशाली और गुरुदेव ने इस पंचमकाल में पधारकर जीवों को भाग्यशाली बनाया। १७.

*

अरे ! पूज्य गुरुदेव तैरते पुरुष थे। स्वयं तैराक। स्वयं अपने से ही तिरे और अन्य सबको तारने का ज़बर परिश्रम उठाया। आलस का नाम नहीं, बारहों महीने हररोज दो वक्त प्रवचन, रात्रि में तत्त्वचर्चा - ४५ साल तक रोज का नियमित यही कार्यक्रम। पूज्य गुरुदेवश्री ने जिस मार्ग को प्रकाशित किया उसी मार्ग पर चलना है।

अहो ! पूज्यश्री ने यात्राएँ करवाई, कैसे करनी यह साथ में रहकर बताया - समझाया। पंचकल्याणक उत्सव - प्रतिष्ठाएँ, मुनि भगवंतों का दीक्षा के समय का वैराग्य - आहारविधि, मुनिवरों की दिनचर्या, मुनिदशा की सही पहचान, श्रावक के योग्य परिणामधारा, जिनेन्द्र प्रतिमा के दर्शन - पूजन - स्तुति - स्तवन कैसे होते हैं, यह सब बाहर का और साथ ही शुद्धात्मस्वरूप चैतन्य का चिंतवन - मनन कैसा होता है, यह सब भीतर का, चैतन्य तत्त्व - जैसे आईने में मुँह दिखे वैसे हस्तामलकवत् दिखाते थे। पूज्य गुरुदेवश्री ने आत्मा की पहचान करवाई, सम्यक्‌दर्शन का वास्तविक स्वरूप समझाया। अंशतः परिणमन कर रही स्थिर परिणति दिखाई। जीव चाहे कहीं भी बाहर अटकता हो तो वहाँ से लौटाकर उसे स्पष्ट मार्ग बताया है।

अहो ! द्रव्य-गुण-पर्याय-उपादान-निमित्त का मेल, निमित्त-नैमित्तिक संबंध, देशव्रत-महाव्रत, निश्चय-व्यवहार, सम्यक्-चारित्रस्वरूप लीनता, केवलज्ञान और सिद्धदशा पर्यंत आत्मा की कैसी-कैसी दशा होती है वह सब प्रत्यक्ष दिखाया है। अब जो कुछ शेष रहता है वह अपनी ही क्षति है, अपना ही प्रमाद है। अतः स्वयं यदि पूज्य गुरुदेवश्री के उपदेश से भीगा हो तो अब क्या करना, यह खुद की ही जिम्मेदारी है, खुद के हाथ की ही बात है - अतः शीघ्रता से पुरुषार्थ उठाकर काम कर लेने जैसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री ने जीवन में सिर्फ एक शुद्धात्मा की पहचान करना और पहचान करके स्वाधीन

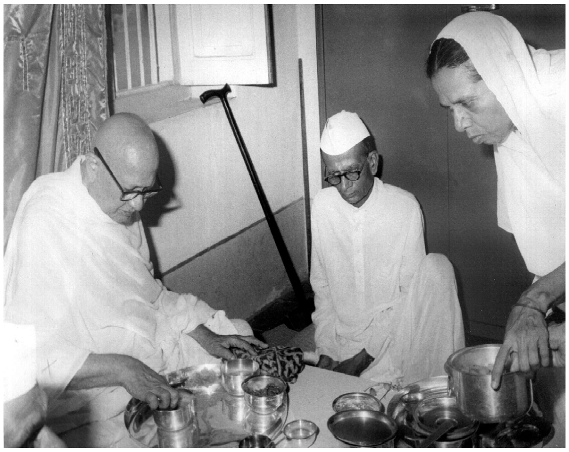

स्वानुभूति प्रगट करने का कहा है। अरे ! चैतन्य भगवान तो तुम स्वयं ही हो, वह तो तुम्हारे पास ही है, सिर्फ विभाव स्वभाव की रुचि के कारण दृष्टि में तुझे वह दिखता नहीं, तू स्वयं को देखने का प्रयत्न नहीं करता इसलिये महा आश्चर्यकारी महाप्रतापी ऐसे तेरे आत्मा को तू देखता नहीं है। २६.

*

दिव्यध्वनि कैसी है ! समुद्र का मेरु पर्वत से मंथन करके जो तत्त्व निकले, आवाज़ आये, ऐसा गंभीर आपकी वाणीका आशय है, अमृत ही है, जगतके जीवोंके विषको-ज़हरको तोड़ देता है। श्रोता को मुग्ध करती दिव्यवाणी है। ऐसी चारों ओर प्रकाश करनेवाली आपकी वाणी है। इस गुरुवाणी को क्या उपमा दी जाये? ऐसी अनुपम गुरुवाणी है। हे गुरुदेव ! आपके ज्ञान को क्या उपमा दी जाये! ३३.

*

पूज्य गुरुदेवश्री प्रतिदिन फरमाते थे कि अरे भाई ! तू तो ज्ञातास्वरूप हो, ज्ञायकदेव हो, जाननेवाला तत्त्व हो, ज्ञायक कोई रूखा या खाली नहीं है, वह तो अनन्त अपूर्वता से भरा है। गुरुदेवश्री की वाणी ऐसी अपूर्व थी। जगत से न्यारा चैतन्य शिरोमणी चैतन्यदेव कोई अनुपम ही है, जिसे इस जगतकी कोई उपमा नहीं दी जा सकती।

यह सुनकर जिसको कुछ जिज्ञासा हो कि, अहो ! ऐसा चैतन्यस्वभाव मुझे कब प्राप्त हो, कैसे प्राप्त हो, उसे आगे बढ़नेका अवसर है।

गुरुदेवश्री ने जब-जब जो कुछ कहा हो उसकी (यथार्थ) महिमा अपूर्वता से बारम्बार आनी चाहिये, आश्चर्य रहना चाहिये। मुझे बराबर समझ में आ गया है, सीख गया हूँ, ऐसी जानकारी पर मदार रखकर बह जाना नहीं चाहिये। ऐसा होने पर तत्त्वका निर्णय रूखा हो जाने का प्रसंग बनता है। प्रत्येक कार्यमें पूज्य गुरुदेवश्री का बेहद उपकार अंतर में छा जाना चाहिये। यह भी मार्गप्राप्ति का क्रम है। ३८.

*

गुरुदेव की वाणी से संसार के रस छूट गये। जिस संसार में रत रहते थे उसके रस छूट गये और आत्मा की ओर लग गये। आत्मा कैसा है ? कैसे प्राप्त हो, इसका रस लग गया। जैसे मुरली बजने पर सर्प का पूरा शरीर ढीला पड़ जाता है वैसे। गुरुदेव की वाणीरूप मुरली से मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी की पकड़ ढीली पड़ गई। संसार का जहर उतार दिया। सेठ-श्रीमंतों का, करोड़पतियों का, रंग-राग में रहनेवालों का रस तोड़ दिया। बालक से लेकर वृद्ध, सबको ऐसा लगने लगा कि ये वाणी कुछ अलग ही प्रकार की है। सबको यह अपूर्व वाणी सुनकर भेदज्ञान करने की प्रेरणा हुई। आत्मा अपूर्व है, गुणों का सागर है, ऐसा सबको लगा। ५१.

*

प्रशममूर्ति भगवतीमाता पूज्य बहिनश्री चंपाबहिनके पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानी संबंधित हृदयोद्‌गार !!

प्रश्न :- 'निहालभाई' कहते हैं कि, विचार कोई साधन नहीं है। वस्तु प्रत्यक्ष पड़ी है, उसमें प्रसरकर बैठ जा। तो यहाँ वस्तु प्रत्यक्ष है माने क्या?

उत्तर :- वस्तु तो प्रत्यक्ष ही है न... तुम स्वयं ही हो। विचार प्रथम होते हैं जरूर, जो विचार वस्तु का निर्णय करने के लिये, प्रमाण-नय आदि के विचार होते हैं परन्तु वे साधन नहीं और विचारों में अटकता रहे तो वस्तु प्राप्त नहीं होती।

*

'निहालभाई' कहते हैं कि, 'पर्याय मेरा ध्यान करो तो करो, मैं किसका ध्यान करूँ ?' यह बात द्रव्य को लक्ष में रखकर की है, अपनी धुन की बात कही है। द्रव्यदृष्टि का बल आता है वह वेदन में आता है।

*

'श्रीमद्' कहते हैं कि, आँख से रेत उठवाना वह स्वभाव से विभाव कराने के बराबर है और 'निहालभाई'ने (कहा कि) स्वभावमें से बाहर निकलना वह भट्ठी लगती है। दोनों में एक ही भाव है। 'भट्ठी जैसा कहना' वह 'आँख से रेत उठवाने' जैसा है। भाषा की कथन पद्धति अलग-अलग है।

*

प्रश्न :- 'वस्तु विचारत ध्यावते मन पावे विश्राम, रस स्वादत सुख ऊपजे, अनुभव ताको नाम' इसमें तो वस्तुविचार से अनुभव होता है ऐसा कहा जबकि, 'निहालभाई' विचार की मना करते हैं तो क्या समझना?

उत्तर :- यहाँ भी 'मन पावे विश्राम' ऐसा लिया है न ? अर्थात् विचार से मन छूटता है तब अनुभव होता है। विचार से अनुभव नहीं होता। अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आता है तब मन भी छूट जाता है तो सिर्फ विचार करने से वस्तु कैसे प्राप्त हो सकती है ? मन से वस्तु उस पार है।

*

प्रश्न :- 'श्रीमद्‌जी' में आता है कि, 'आत्मभ्रांति सम रोग नहि... औषध विचार ध्यान' इसमें क्या कहना चाहते हैं ?

उत्तर :- हाँ, आता है कि, प्रथम भूमिका में विचार होता तो है परन्तु वह साधन नहीं है। 'निहालभाई' कहते हैं कि, अन्दर में प्रसर जा। स्व में प्रसर जाना वही विधि और कला है। प्राथमिक भूमिका में सब आता है, होता है बाद में छूट जाता है। (दि. १२-४-७२)

*

परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी द्वारा लिखित आध्यात्मिक पत्र

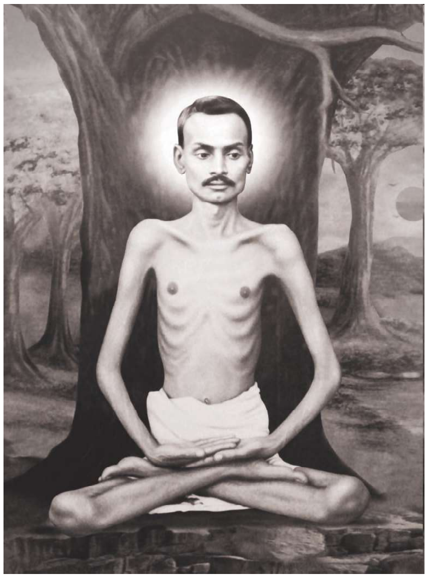

पत्रांक ३७२

बंबई, वैशाख वदी १४, बुध, १९४८

आपका एक पत्र आज प्राप्त हुआ।

आपने उपाधिके दूर होनेमें जो समागममें रहने रूप मुख्य कारण बताया है वह यथातथ्य है। आपने पहले भी अनेक प्रकारसे वह कारण बताया है, परंतु वह ईश्वरेच्छाधीन है। जिस किसी भी प्रकारसे पुरुषार्थ हो उस प्रकारसे अभी तो करें और समागमकी परम इच्छामें ही अभेदचिंतन रखें। आजीविकाके कारणमें प्रसंगोपात्त विह्वलता आ जाती है यह सच है; तथापि धैर्य रखना योग्य है। जल्दी करनेकी जरूरत नहीं है, और वैसे वास्तविक भयका कोई कारण नहीं है। श्री-

*

पत्रांक ३७३

बंबई, वैशाख वदी १४, बुध, १९४८

मोहमयीसे जिनकी अमोहरूपसे स्थिति है, ऐसे श्री.....के यथायोग्य।

'मनके कारण यह सब है' ऐसा जो अब तकका हुआ निर्णय लिखा, वह सामान्यत: तो यथातथ्य है। तथापि 'मन', 'उसके कारण', 'यह सब' और 'उसका निर्णय' ऐसे जो चार भाग इस वाक्यके होते हैं, वे बहुत समयके बोधसे यथातथ्य समझमें आते हैं, ऐसा मानते हैं। जिसे ये समझमें आते हैं, उसका मन वशमें रहता है; रहता है यह बात निश्चयरूप है; तथापि यदि न रहता हो तो भी वह आत्मस्वरूपमें ही रहता है। मनके वश होनेका यह उत्तर ऊपर लिखा है, वह सबसे मुख्य लिखा है। जो वाक्य लिखे गये हैं वे बहुत प्रकारसे विचारणीय हैं।

महात्माकी देह दो कारणोंसे विद्यमान रहती है-प्रारब्ध कर्मको भोगनेके लिये और जीवोंके कल्याणके लिये; तथापि वे इन दोनोंमें उदासीनतासे उदयानुसार प्रवृत्ति करते हैं ऐसा हम जानते हैं।

ध्यान, जप, तप और क्रिया मात्र इन सबसे हमारे बताये हुए किसी वाक्यको यदि परम फलका कारण समझते हों तो, निश्चयसे समझते हों तो, पीछेसे बुद्धि लोकसंज्ञा, शास्त्रसंज्ञापर न जाती हो तो, जाये तो वह भ्रांतिसे गयी है, ऐसा समझते हों तो, और उस वाक्यका अनेक प्रकारके धैर्यसे विचार करना चाहते हों तो, लिखनेकी इच्छा होती है। अभी इससे विशेषरूपसे निश्चय-विषयक धारणा करनेके लिये लिखना आवश्यक जैसा लगता है, तथापि चित्तमें अवकाश नहीं है, इसलिये जो लिखा है उसे प्रबलतासे मानियेगा।

सब प्रकारसे उपाधियोग तो निवृत्त करने योग्य है; तथापि यदि वह उपाधियोग सत्संग आदिके लिये ही चाहा जाता हो तथा फिर चित्तस्थिति संभवरूपसे रहती हो तो उस उपाधियोगमें प्रवृत्ति करना श्रेयस्कर है। अप्रतिबद्ध प्रणाम।

पूज्य गुरुदेवश्रीको आहारदान करते हुए पूज्य सोगानीजी

पूज्य निहालचंद्रजी सोगानीजीके
पूज्य गुरुदेवश्रीके
प्रति भक्तिपूर्ण हृदयोद्‌गार

पूज्य 'गुरुदेव' की स्मृति इस समय भी आ रही है व आँखोंमें गर्म आँसू आ रहे हैं कि उनके संग रहना नहीं हो रहा है। उनका असंगरुचिका उपदेश (अथवा स्वसंगका) कानोंमें गूँजता रहता है और उसकी रमणतासे ही यहाँ की उपाधियाँ ढीली-सी रहती है। उस दिनकी प्रतीक्षामें हूँ कि कब उस गरजती हुई दिव्यमूर्तिके चरणोंमें शीघ्र अपने आपको पाऊँ।... (पत्रांश-४)

*

हे 'गुरुदेव' ! लोकोत्तर लाभ हेतु आपके वचनों पर श्रद्धा की है, आशीर्वाद देता हुआ आपका मोहक चित्र देखा है। आपके आशीर्वाद से पूर्ण आनंदमयी निधि को प्राप्त हो जाऊँ और अनंत पदार्थों के तीनकाल के अनंते भाव वर्तमान एक-एक भाव से अविच्छिन्न प्रत्यक्ष होते रहें - ऐसी तीव्र अभिलाषा है। दरिद्री को चक्रवर्तीपने की कल्पना नहीं होती। पामरदशावाले को 'भगवान हूँ....भगवान हूँ' की रटन लगाना, हे प्रभो ! आप जैसे असाधारण निमित्त का ही कार्य है। परिणति को आत्मा ही निमित्त होवे अथवा भगवान.... भगवान की गुंजार करते आप; अन्य संग नहीं; यह ही भावना। (पत्रांश-२६)

*

यहाँ तो पूज्य गुरुदेव ने आत्मगढ़ में वास कराकर प्रसाद चखाया है, अतः क्षणिक विकल्प भी सहज विस्मरण होते रहते हैं। कहता हूँ कि : हे विकल्पांश ! तेरे संग अनादि से दुःख अनुभव करता आया हूँ, अब तो पीछा छोड़। यदि कुछ काल रहना ही चाहता है तो सर्वस्व देनेवाले परम उपकारी श्री गुरुदेव की भक्ति-सेवा-गुणानुवाद में ही उनके निकट ही वर्त ! इस क्षेत्र में तो अधिक दुःखदायी है। चूँकि गुरुदेव ने इसकी उपेक्षा कराकर इससे विमुख करवा दिया, अतः यह भी लंबाकर साथ नहीं देता। (पत्रांश-४२)

*

परम कृपालु 'गुरुदेवश्री'के मुखारविंदसे मुझ संबंधी निकले सहज उद्‌गार आपको अमुक-अमुक स्थानोंके भाईयोंसे ज्ञात हुए सो आप सबने स्वाभाविक प्रसन्नता और उत्साहपूर्वक मुझे लिखे, सो जाने।

मुक्तिनाथकी इस दास प्रत्ये सहज कृपादृष्टि इस बातका द्योतक है कि अति उमंगभरी मुक्तिसुंदरी अप्रतिहतभावे, मुझ कृतकृत्यके साथ, महा आनंदमयी अस्खलित, परमगाढ आलिंगनयुक्त रहकर शीघ्रातिशीघ्र कृतकृत्य होना चाहती है।

परम पिताश्रीने हम सब पुत्र मण्डलको अटूट लक्ष्मीभण्डार (दृष्टिरूपी चाबी द्वारा खोलकर) भोग हेतु प्रदान किया है, इसे नित्य भोगो, नित्य भोगो, यह ही भावना है। (पत्रांश-५१)

*

पूज्य श्री निहालचंद्र सोगानीजी की ११३ वीं जन्मजयंती पर उन्हें कोटी कोटी वंदन

पूज्य गुरुदेवश्री के महापुराणका यह एक पात्र है। सोनगढ़की तीर्थभूमि-इस तीर्थभूमिमें सम्यक्दर्शनरुपी सपूत कोई जागा नहीं था, तब तक जो-जो धर्मात्मा हुए वे सोनगढ़ भूमिमें नहीं हुए, अलग-अलग भूमि पर हुए हैं। जबकि गुरुदेवकी यह जो साधनाभूमि है, इस साधनाभूमिको साधनाकी एक नयी यशकलगी लगी और यह भूमि भी फलवंती हुई और एक फल पका-वे सोगानीजी हैं। पूज्य सोगानीजीका बहुमान, यह सिर्फ एक व्यक्तिका बहुमान नहीं है, यह सम्यक्दर्शनका बहुमान है और जो-जो सभी सम्यक्दर्शन धारक महात्माएँ हैं, धर्मात्माएँ हैं, उन अनंत-तीनों कालके धर्मात्माओंका बहुमान है, सन्मान है।

– पूज्य भाईश्री शशीभाई

REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2024-2026
RENEWED UPTO : 31/12/2026
R.N.I. NO. : 69847/98
Published : 10th of Every month at BHAV.
Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS
Total Page : 20

... दर्शनीय स्थल...

'गुरु गौरव'

सोनगढ़

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री राजेन्द्र जैन द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर मिल कम्पाउन्ड, बारडोलपुरा, अहमदाबाद-३८० ००४ से मुद्रित एवम् ५८० जूनी माणिकवाडी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर-३६४ ००१ से प्रकाशित
सम्पादक : श्री राजेन्द्र जैन -09825155066

If undelivered please return to ...
Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001

Printed Edition :
Visit us at : http://www.satshrut.org